महात्मा बसवेश्वर एवं संत कबीर के क्रांतिकारी विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

प्रा. डॉ. विजय शिवराम पवार , हिंदी विभाग,श्री गुरु बुध्दिस्वामी महाविद्यालय, पूर्णा(जं.) जि. परभणी

भूमंडलीकरण के दौर में आज देश–विदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों मे "तुलनात्मक साहित्य" का स्वतंत्र अध्ययन किया जा रहा है। अत: इसके महत्व को देखते हुए आज भारतीय साहित्य भी इससे परे नहीं है। इसलिए इसका प्रभाव आज भारतीय साहित्य पर देखा जा सकता है। भारत में विभिन्न भाषाओं के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन व्यापक पैमाने पर किया जा रहा है। इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए मैने महात्मा बसवेश्वर और संत कबीर के क्रांतिकारी समाजिक विचारों का तुलना कर शोध–प्रपत्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

भारत की पुण्य–पावन भूमि पर प्राचीन काल से ही अनेक संत, मुनि, महात्मा एवं महापुरुषों आदि दिव्यात्माओं का अवतरण होते आया है। इन दिव्य पुरुषों ने अपने ज्ञान और अमृतमयी वचनों से इस देश और समाज को ही नहीं बल्कि, संपूर्ण विश्व को छल–प्रपंच और असत्य के क्रुर अंधकार से निकालकर सत्य और न्याय का अनोखा प्रकाश प्रदान किया। भारत के महान संतो और दिव्यात्माओं की परंपरा की कड़ी में दाक्षिणात्य में महात्मा बसवेश्वर का आविष्कार सन ११०५ में हुआ। तो उत्तर भारत में सन १३९९ के आस–पास संत कबीर का आविष्कार हुआ। इन दोनों की क्रांतिकारी विचारों से आज समस्त मानव जाति का कल्याण हो सकता है। मध्यकाल के इन क्रांतिकारी महात्माओं के विचार वर्तमान युग में अनुकरणीय एवं प्रासंगिक हैं।

श्रम को महत्व देते हुए महात्मा बसवेश्वर कहते हैं कि, 'कायक वे कैलास', 'श्रम ही स्वर्ग है', ये बसवजी के प्रसिध्द वचन हैं। 'कायक' का अर्थ शब्दश: देह से संबंधित होता है। 'काया' याने देह या शरीर, अंग मेहनत या व्यक्ति ने किया हुआ कोई भी कार्य। बसवजी की दृष्टि से मानव को अपनी उपजीविका चलाने के लिए कोई न कोई व्यवसाय करना चाहिए। प्रामाणिकता से कार्यरत रहना इस बात पर जोर देते हुए कोई भी व्यक्ति उपजीविका का भार समाज के कंधों पर न डालें या भिक्षा न माँगे कहते हुए भिक्षा माँगना यह महापाप है। इस तरह अपना मत प्रकट किया है। बसवजी सच्चे अर्थों में समताधिष्ठीत जीवनशैली का प्रतिपादन करनेवाले एक प्रमुख व्याख्याता के रुप में भी समाज के समक्ष आते हैं। श्रम करे बिना खाना खाने का अधिकार किसी को नही, यह सूत्र बतलाते हुए श्रम ही साक्षात कैलास या स्वर्ग है, ऐसी अत्यंत अर्थपूर्ण व्यापक भूमिका इन्होने समाज के समक्ष रखने का प्रयास किया था। इसी तरह संत कबीर भी श्रम को महत्व देते हुए कहते हैं–

"श्रम ही ते सब होत है, जो मन राखै धीर।
श्रमते खोदत कूप ज्यों, थल में प्रगटै नीर।"[१]

परिश्रम से ही सभी कार्य सफल व बिगड़े हुए काम भी सुधर जाते हैं। लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि, मन में धैर्य रखें। जैसे परिश्रम से कुआं खोदने पर पृथ्वी से पानी निकल आता है। जीवन में परिश्रम करने से अवश्य ही सफलता मिलती है। यह मंतव्य आज भी अनुकरणीय है। वर्तमान समाज की विडंबना ही कहना पड़ेगा कि, अनादिकाल से श्रम को इतना महत्व होने के बावजूद भी आज जो स्थान या महत्व श्रम को मिलना चाहिए था, वह नही मिल सका। जिन राष्ट्रों ने श्रम के महत्व को समझा वे आज प्रगति पथ पर है।

महात्मा बसवेश्वर एक ऐसे महापुरुष थे, जिन्होंने युगीन समाज में प्रचलित जाति–पाति को अमान्य किया। अत: जाति के आधार पर मानव गुण और अवगुण निर्भरता को ठुकराया तथा कोई श्रेष्ठ या कनिष्ठ जाति के आधार पर नहीं होता बल्कि कर्म के आधार पर होता है। यह समझाते हुए कहते हैं:

"भोईणीचा सूत नाव त्याचे व्यास
मार्कंडेय खास मांगणीचा
जातीची थोरी काय कीजे
बेरडाचे पोटी अगस्तीचा जन्म,
चांभार उत्तम तो दुर्वास
कश्यप तो लोहार, कौण्डिण्य तो न्हावी,
तिन्ही लोकी बरवी प्रसिध्दी ती, जातीचे श्रेष्ठतव हाची वेडाचार।"[२]

संत कबीर ने भी भक्ति के द्वार प्रत्येक के लिए खोलकर सबको उसका अधिकारी बताया है। वे ब्राम्हण, वैश्य, क्षूद्र आदि में किसी भी भाँति के भेद–भाव को अमान्य कर कहते हैं कि, सबकी रचना उन्हीं पाँच तत्वों से हुई है, सबका स्रष्टा पिता परमात्मा एक ही है। कबीर का पालन–पोषण जुलाहा नामक निम्न जाति में होने के कारण, स्वयं जाति व्यवस्था की दाहकता को उन्होंने अनुभव किया था। अत: कबीर कहते हैं कि, साधु की जाति या कुल की खोज करने के बजाए वह कितना ज्ञानी है, यह देखना चाहिए। उसके ज्ञान की कीमत आँकी जानी चाहिए न की उसकी जाति की। क्योंकि युध्द क्षेत्र में तलवार ही ढंग की न हो तो वह किस काम की? कबीर जाति–पाति को अमान्य करते हुए कहते हैं–

"जाति न पूछो साधु की, पुछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार की, पड़ा रहने दो म्यान।।"
"जाति–पाति पूछै नहिं कोई।

हरि को भजै सो हरि का होई।।"[३]

अत: कहा जा सकता है कि इन क्रांतिकारी समाजसुधारकों ने आम आदमी का मूल्यांकन जाति नामक संकुचित संस्था का शरसंधान कर व्यक्ति के श्रम, गुण व ज्ञान के आधार को महत्व देकर किया है।

महात्मा बसवेश्वर ने परमेश्वर की पूजा–अर्चना में पुरोहित की ओर से जो भक्ति के नाम पर भिन्न प्रकार के दरफलक लगाए जाते थे, जिसके कारण इस क्षेत्र में असंमंजस्य की स्थिति उत्पन्न होती थी। उसका विरोध करते हैं क्योकि, अभिषेक के लिए जिसके पास पैसे नहीं होते वे अभिषेक नहीं कर पाते। इस संबंध वे कहते हैं–

"बोटे मोजून परमार्थ शक्य होवो।
आश्चर्यकारक नव्हे काय?।
नाक दाबून मुक्तीची अपेक्षा करणे।
हास्यास्पद नव्हे का?।"[४]

संत कबीर कहते हैं कि पत्थर को पूजने से ज्ञान की प्राप्ति हो जाए, तो मैं पर्वत को पूजने लग जाऊँ। पत्थर की मूर्ति पूजने से तो चक्की पूजना ज्यादा अच्छा है, जिसे पिसा अनाज संसार खाता है–

"पाहन पूजै हरि मिलै, तो मैं पूजूं पहार।
ताते तो चक्की भली, पीसि खाए संसार।।"[५]

वेदों का विरोध करते हुए महात्मा बसवेश्वर कहते हैं कि, वैदिकों ने स्वहित रक्षणार्थ तथा अन्य समाज का शोषण करने हेतु ही पुराणों की निर्मिति की है। वेद विद्‌याग्रहण करने के पश्चात महात्मा बसवेश्वर के ज्ञानचक्षु खुलने पर कहते हैं–

"शास्त्रास थोर म्हणावे का? कर्माची पूजा करतो
वेदास थोर म्हणावे का? प्राणीं हत्या सांगतो
श्रृतीस थोर म्हणावे का?"[६]

संत कबीर भी स्वतंत्र शुध्दाचरण करनेवाले ज्ञानी को ही अपना गुरु कहना पसंद करते थे। अन्य सभी संप्रदाय या वेद पठन करनेवालों का विरोध कर सच्चे धर्म के शुध्दाचरण धर्म पालनेवालों की प्रशंसा करते हुए पढ़त पंडितों को वे टोकते हैं–

"पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोई।
एकै आखर पीव का, पढ़ै सो पंडित होई।"[७]

महात्मा बसवेश्वर ने यज्ञसंस्था, पौरोहित्य, यज्ञिकजन, स्मार्त, अग्निहोत्र वैदिक कर्मकांडों का विरोध करते हुए कड़ा प्रहार किया है। ब्राम्हण पुरोहित की ओर से शोषण कार्य, यज्ञ की अपव्यय, छुआछूत, बाह्यकर्मकाण्ड, दुष्टाचरण आदि की अतिरेक से निर्माण होनेवाली मानसिक गुलामी का निषेध करते हुए अपने वचन में कहते हैं कि–

"अग्निदेवाला हवी देणाऱ्या ब्राम्हणाच्या घराला
आग लावल्यावर काय करतात?
नैवेद्‌य, बळी, समिधा, वगैरे टाकीत नाहित
मग मोरीचे घाणेरडे पाणीही चालते
किंवा रस्तावरची माती धूळ ही चालते।
हे दुटप्पी वागणे नव्हे काय?"[८]

समाज कुमार्ग पर चल पड़ा था। कई आडंबरों, दिखावे को सच समझकर समाज गलत आचरण कर रहा था। हिंदू अनेक देवी–देवताओं में उलझ गए थे, तो मुसलमान अपने नियमों में लिप्त थे। समाज के ज्यादातर लोग आँखों पर पट्‌टी बाँधे अंधानुकरण कर रहे थे। इसपर कबीर के विचार दृष्टव्य है–

"दिन भर रोजा रहत है, राति हनत है गाय।
यह तो खुन वह बंदगी, कैसे खुशी खुदाय?
माँस माँस सब एक है, मुरगी हिरनी गाय।
आँख देखि नर खाते हैं, वे नर नरकहि जाय।"[९]
"अरे इन दोहुन राह न पाई।
हिंदू अपनी करे बड़ाई गागर छुवन न देई।"[१०]

महात्मा बसवेश्वर के वीरशैव लिंगायत धर्म में सभी व्यवसाय करनेवाले लोग थे, सिर्फ 'कसाई' नही है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्राणि हिंसा को त्याज्य माना गया है। बसवजी आजन्म अहिंसा का पुरस्कार करनेवालों में जाने जाते हैं। हिंसा करनेवालों को भी कभी मृत्यु से छुटकारा नहीं मिल पाता। इसी को स्पष्ट करते हुए अपने वचनों में कहते हैं–

"नवसाचा बकरा, सनासी आणीला
तोरण पानाला, खाऊ लागे
बळी जावयाचे, नाही तया भान
पोटाकडे ध्यान, बापुड्‌याचे
जन्म घेई जैसा, मरतसे तैसा
अतानी तो ऐसा, बळी जाय

कुडलसंगमदेवा। वधिती जे त्यासी
मरण तयासी, चुकेल काय?"[११]

संत कबीर ने भी प्राणिहिंसा के प्रति अपने विचार प्रकट किए हैं—

" "दिन भर रोजा रहत है, राति हनत है गाय।
यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुशी खुदाय?"[१२]

इसके बावजुद दोनों महात्माओं में भिन्नता भी नजर आती है। महात्म बसवेश्वर का जन्म १२ वीं शती में हुआ है, तो महात्मा कबीर का जन्म १४ वीं शती में। बसवेश्वर उच्च कुल से थे तो कबीर निम्न जाति—जुलाहा से थे। बसवेश्वर राजा के प्रधानमंत्री पद पर थे, तो कबीर किसी पद पर आसीन नहीं थे बल्कि, एक आम आदमी थे। बसवजी का क्षेत्र दाक्षिणात्य रहा है, तो कबीर का उत्तर भारत। बसवजी कन्नड़ भाषीक थे, तो कबीर हिंदी भाषीक। बसवजी ने वीरशैव धर्म की स्थापना की, तो कबीर ने किसी धर्म की स्थापना नहीं की। आदि भिन्नता होने के बावजुद दोनों महात्माओं में मानवीय मूल्यों को लेकर साम्यता दिखाई देती है। ये दोनों अपने विचार कृतिद्वारा आचारण में लाने वाले समाजसुधारवादी व्यक्ति थे। ये ऐसे प्रखर बुध्दिवादी थे कि, जिनके क्रांतिकारी विचार आज भी प्रासंगिक है। इन्होने सांसारिक जीवन का आनंद लेते हुए परमार्थ की प्राप्ति का संदेश दिया। ऐसे समतावादी संत जो 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' का संदेश देकर पूरे विश्व में शांति की पहल का जो संदेश दिया है वह अनमोल एवं महत्वपूर्ण है। दोनों के परिवेश, क्षेत्र में भिन्नता होने के बावजूद भी इनका साहित्य तत्कालीन विषमता, अराजकता, अंधश्रध्दा, धार्मिक आडंबर, जाति—पाति का खंडन करते हुए मानवीय मूल्यों की रक्षा का जो भार उठाया है वह अतुलनीय है। इसलिए इनके समाजसुधारवादी क्रांतिकारी विचार आज भी प्रासंगिक है।

वर्तमान समाज में जातियता, धर्मांधता, भ्रष्टाचार, एवं अंधश्रध्दा आदि को व्यापक पैमाने पर बढ़ते देखा जा सकता है, और इसी कारणवश कहीं न कहीं मानवीय मूल्यों का ऱ्हास होते दिखाई दे रहा है। आज धर्म की आड़ में पाखंडियों की ओर से कुप्रथाओं की बाढ़ देखी जा सकती है। भ्रष्टाचार शिष्टाचार होने के कगार पर दिखाई दे रहा है और इन्हीं नैतिक मूल्यों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण, अंधश्रध्दा निर्मुलन आदि जीवनमूल्यों की पुनःस्थापना करने के लिए महात्मा बसवेश्वर एवं संत कबीर के क्रांतिकारी विचार प्रेरणादायी सिध्द हो सकते हैं। आज इनकी अमृतवाणियाँ जो पग—पग पर हमारा पथ—प्रदर्शन करती है, हमें असत्य से सत्य की ओर, पाप और पाखंड से पुण्य और प्रेम की ओर तथा अंधकार से प्रकाश की ओर ले जा सकती है।

संदर्भ

१. कबीर दोहावली, राजश्री प्रकाशन, पृ. १३३
२. समाजक्रांतिचे जनक महात्मा बसवेश्वर, पृ. २१
३. कबीर दोहावली, राजश्री प्रकाशन पृ.
४. बाराव्या शतकातील आद्य समाजसुधारक: महात्म बसवेश्वर, पृ. ७६
५. कबीर दोहावली—राजश्री प्रकाशन, पृ.११८
६. डॉ. दे. जौरेगौडा, महात्मा बसवेश्वर व डॉ. आंबेडकर, पृ. १२५
७. डॉ. जयदेव सिंह, डॉ. वासुदेव सिंह—कबीर वाङमय, खंड—३ साखी, पृ. २८३
८. डॉ. भगवानदास तिवारी, महात्मा बसवेश्वर व्यक्ति और दर्शन, वचन क्र. ५८४,
९. श्रावण फरकाडे—बहुजनांचा मार्गदर्शक, पृ. १६
१०. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—कबीर पद ४२, पृ. ४७
११. बाराव्या शतकातील आद्य समाजसुधारक महात्मा बसवेश्वर, पृ. १०२
१२. श्रावण फरकाडे—बहुजनांचा मार्गदर्शक, पृ. १६